सामयिकता के प्रश्न और अंधायुग

सारांश

अंधा युग के मिथकीय कथानक को धर्मवीर भारती जी ने युग सापेक्ष मूल्यों के संदर्भ में पुनर्व्याख्यायित किया है। पूरी रचना पौराणिकता और आधुनिकता के स्तर पर खरी उतरती है। समकालीन युग बोध की व्यापक अभिव्यंजना अंधायुग की सम्वेदना है।

मुख्य शब्द : पौराणिकता, सामयिकता, अभिव्यंजना।

वीरेन्द्र भारद्वाज
एसोसिएट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
शिवाजी कालेज,
दिल्ली, भारत

प्रस्तावना

'अंधायुग' का कथानक भले ही पौराणिक–ऐतिहासिक है, किंतु इसकी रचना–दृष्टि पूर्णतः आधुनिक है। इस नाट्य–काव्य का प्रत्येक पात्र आधुनिकता की कसौटी पर खरा उतरता है और युग बोध के ढाँचे में ढला है। महाभारत के युद्ध के अठारहवें दिन से लेकर प्रभास तीर्थ में कृष्ण की मृत्यु तक की गाथा अंधायुग में कही गयी है। महाभारत काल की विकृतियाँ, विद्रूपताएँ तथा असंगतियाँ एवं मनोवृत्तियाँ हमारे सामने से उभर रही हैं, क्योंकि आज भी भौतिकता–परक संस्कृति चरमोत्कर्ष पर है। जीवन के चिरन्तन और सामयिक मूल्यों को इस कृति में उजागर किया गया है। इसकी प्रासंगिकता के संदर्भ में रामस्वरूप चतुर्वेदी का कथन दृष्टव्य है कि पौराणिक कथानक को लेकर अपने युग के प्रति इतना कन्सर्न किसी अन्य रचना में कठिनाई से मिलेगा।'' इस कृति में आधुनिकता का पुट केवल काव्य–गत भाव में ही नहीं, किंतु चिन्तन–प्रक्रिया में भी है। अनिरन्तरता की समस्या का समाधान खोजने में आधुनिकता की प्रक्रिया का पहला दौर झलकता है। भारती की दृष्टि अन्वेषणपरक एवं प्रतीक्षाजन्य है। मिथकीय पद्धति के सहारे रचना में प्रस्तुत युग बोध को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने के साथ–साथ विगत को आगत से जोड़ने और निरन्तरता में आस्था उत्पन्न करने का प्रयास किया गया है। भारतीय ने जीवन सत्य को वर्तमान के संदर्भ में उतारने की चेष्टा की है। तभी ''डॉ भारती ने महाभारतकालीन पौराणिक पात्रों और प्रसंगों को नवीन जीवन संदर्भ और नवीन युगबोध की संवेदना से सर्जित किया है।'' समकालीन युगबोध की व्यापक अभिव्यंजना अंधायुग की संवेदना है।

अंधायुग की भाव चेतना प्रासंगिकता की दृष्टि से तीन स्तरों पर विश्लेषित की जा सकती है – पौराणिक, युगीन और मानवीय मूल्यों की योजना महाभारतकालीन युद्ध–जन्य, यथार्थ परिवेश निश्चित रूप से पौराणिक है, उसकी पौराणिक प्रासंगिकता है क्योंकि यह कृति महाभारतकाल के यथार्थ अथवा महाभारतयुगीन सत्य के सन्दर्भों को रेखांकित करती है। इस कृति की भावचेतना का दूसरा स्तर प्रथम एवं द्वितीय महायुद्ध द्वारा लाई गई मानवीय स्थिति से संबंधित है और तीसरा स्तर मनुष्य के मानस में ही विद्यमान पशुत्व की भावना से है। लेखक ने संकेत किया है कि युद्ध केवल बाहर ही नहीं भीतर भी चलता है। व्यक्ति मानस में निरंतर एक युद्ध वृत्ति विद्यमान रहती है। बाह्य युद्ध तो उस भीतरी युद्ध की अभिव्यक्ति मात्र है। अर्थ के इन स्तरों के सम्मिश्रण के कारण अंधायुग किंचित जटिल हो जाता है। किंतु उसकी यह जटिलता युगीन परिस्थिति की है. मानव मन की है, मानव–अनुभूतियों की है। अनुभूति एवं भावों की यह जटिलता समकालीन कविता की एक प्रमुख प्रवृत्ति है। इस कृति में जितने भी पात्र एवं घटनाएँ हैं वे आधुनिक सत्य एवं महायुद्धोत्तरकालीन वर्तमान संवेदना अथवा आधुनिक युगबोध को भी व्यजित करते हैं। अंधायुग में पौराणिक–ऐतिहासिक घटनाओं–प्रसंगों की उपस्थिति के संदर्भ में भारती जी का कथन है – ''अधिकतर कथावस्तु प्रख्यात है, केवल कुछ ही तत्व उत्पादय हैं – कुछ स्वकल्पित पात्र और कुछ स्थापित घटनाएँ। वस्तुतः नये कवि की विशिष्ट मानसिकता ने कृति की समय कथा को महाभारत के घटनाचक्र के एक विशेष क्षण में विश्लेषित किया होगा इसका कारण यह है कि कवि ने दो विश्वयुद्धों के द्वारा मानवता को कलुषित होते। आस्था, विश्वास एवं मानवमूल्यों को खण्डित होते तथा व्यापक मानवता का नृशंस हनन होते देखा है। अंधायुग के रचनाकाल

(1954) और युगबोध को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि उस समय अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मानव दो–दो विश्वयुद्धों की विभीषिका झेल चुका था, और विश्वशक्तियों के दो गुटों में बंटे होने के कारण विश्वमानव को तीसरे महायुद्ध की संभावना एवं विभीषिका अस्त कर रही थी। राष्ट्रीय स्तर पर भी भारत–पाक विभाजन की त्रासदी को भारतीय जनमानस झेल रहा था। भारती जी ने स्वयं इस युग पीड़ा को अपनी आँखों से देखा था और अनुभव किया था कि द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान जो भयानक ध्वंस, विनाश, रक्तपात हुआ है। मानव के अंदर मानव के ही प्रति जो क्रोध, घृणा, प्रतिरोध जैसी विकृत मनोवृत्तियाँ पनपी है, मान–मर्यादा, सामाजिक जीवन मूल्यों का जो ह्रास हुआ है यह सब निश्चय ही वर्तमान मानव और भविष्य के लिए घातक एवं चिंता का विषय है। महाभारत के युद्ध में युद्ध की यह बर्बरता विद्यमान थी इसलिए प्रासंगिकता के प्रश्नों को उद्घाटित करने के लिए भारती जी ने महाभारत के उस अंश को चुना जो उनके युग से पूरी तरह मेल खाता हो।

महाभारत में धर्मराज जैसे सत्यवादी पात्र को भी विजय और गुरु द्रोण की हत्या की कामना से पीड़ित होकर अर्द्धसत्य का सहारा लेना पड़ता है और महान चरित नायक श्रीकृष्ण जो सभी मर्यादाओं, आदर्शों एवं सत्य के रक्षक हैं, को अनीति के द्वारा किसी एक पक्ष का वरण करना पड़ता है। लेकिन श्रीकृष्ण ही महाभारत युग में एकमात्र ऐसे पात्र बचे थे, जिसमें भविष्य का रक्षक और अनासक्त होने के कारण युद्धभूमि में उलझी हुई मर्यादा की डोरी सुलझाने का सामर्थ्य शेष था। युद्ध के उद्देश्य चाहे जितने भी महान हो, युद्ध सभी को, चाहे वे कितने ही आदर्शवादी, सत्यवादी अथवा मर्यादावादी क्यों न हो – पशु बनने के लिए विवश कर देता है। भारती जी ने महाभारत काल की युद्धोत्तर परिस्थितियों के संबंध में लिखा है –

''युद्धोपरांत यह अंधा युग अवतरित हुआ
जिसमें स्थितियों, मनोवृत्तियाँ, आत्माएँ सब विकृत हैं
है एक बहुत पतली डोरी मर्यादा की
पर वह भी उलझी है दोनों ही पक्षों में
सिर्फ कृष्ण में साहस है सुलझाने का
वह है भविष्य का रक्षक, वह है अनासक्त
पर शेष अधिकतर हैं अंधे
पथभ्रष्ट, आत्महारा, विगलित
अपने अंतर की अन्धगुफाओं के वासी
यह कथा उन्हीं अंधों की है।
या कथा ज्योति की है, अंधों के माध्यम से।''

उपरोक्त पद्यांश से स्पष्ट है कि महाभारत के युद्ध के पश्चात् समस्त धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों और सोन्मुख हुई। आज के समाज में भी व्यक्तिगत स्वार्थ सर्वोपरि है। स्वार्थ के वशीभूत मानव मन उचित–अनुचित का विवेक खो बैठा है। धृतराष्ट्र के चरित्र की आधुनिक शासकों से तुलना करते हुए डॉ. सुरेश गौतम ने लिखा है– समकालीन सदी में भी अनेक राजाओं/नेताओं ने अपनी व्यक्तिगत लालसाओं एवं आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए कितने ही नए महाभारतों को जन्म दिया है। धृतराष्ट्र वैयक्तिक सीमाओं और स्वार्थों में जकड़े हुए शासक के प्रतीक है। धृतराष्ट्र का हस्तिनापुर की बना राजगद्दी पर बना रहने और अपने पुत्रों के लिए सत्ता को सुरक्षित बनाए रखना महाभारत के रण का प्रमुख कारण बनता है। धृतराष्ट्र पाण्डवों के विरुद्ध जाकर अपने पुत्रों के मर्यादाहीन आचरण के प्रति अपने मन की आँखें बन्द कर लेता है। परिणामतः वह युद्ध को आमंत्रित करता है। आज का दौर अनेक राजाओं की विकृत, अंधी लालसाओं का दौर है। युद्धोपरांत उपजे कड़वे यथार्थ की पशु वृत्तियों की पीड़ा जीवन के औचित्य की सीमाओं को लांघकर घोर निराशा की मूल्यहीन अंधी गली में धकेल देती है। जहाँ परम्पराएं, मर्यादा, संस्कार पूरी तरह से जर्जर और विकृत हैं। भारती जी ने वृद्ध याचक का प्रेतात्मा के माध्यम से पात्रों की आंतरिक असंगति को दिखाने का ही प्रयास नहीं किया है अपितु अंधे समुद्र के सांगरूपक के माध्यम से सारे युग की समस्त विकृत्तियो–विसंगतियों को सामने रख दिया है।

''यह युग एक अंधा समुद्र है
चारों ओर से पहाड़ों से घिरा हुआ
और दरों से
और गुफाओं से
उमड़ते हुए भयानक तूफान चारों ओर से
उसे मथ रहे हैं
और इस बहाय भवन है गति है
किंतु नदी की तरह सीधी नहीं
बल्कि नागलोक के किसी गहवर में
ऐसा है यह अंधा समुद्र
X X X
जिसे हम आज का मल प्रवाह कह सकते हैं।''

उपरोक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि यह अंधा युग चारों ओर से घिरे अब समुद्र की भांति है जिसमें अंधे साँप के समान स्वार्थान्ध और मोहान्ध प्रकृति के लोग अपनी आँखों पर पट्टी बाँधकर युग जीवन की स्वाभाविक गति बाधक बने हुए हैं। आधुनिकता और प्रासंगिकता की दृष्टि से भी भारती जी के अंधायुग को पहचानने की आवश्यकता इसलिए महसूस होती है कि इसमें आधुनिकता को खोजा और पाया गया है। वास्तव में अंधायुग अपने समय की परिस्थितियों से जूझते मानव के अंधेपन का प्रतीक है।

युद्ध की विभीषिका एवं बर्बरता से अश्वत्थामा इतना प्रताड़ित होता है कि अंत में वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है, वह समझ नहीं पाता कि वह क्या करें? क्योंकि उसके अंतर में जो भी सत्य था. सुदर था. शिव या कोमलतम रूप था, सबको युद्ध की बर्बरता ने नष्ट कर दिया। अश्वत्थामा मार्मिक चीत्कार करता है–

''उस दिन से
मेरे अन्दर भी
जो शुभ था, कोमलतम था
उसकी भ्रूण हत्या
युधिष्ठिर के
अर्द्धसत्य ने कर दी
धर्मराज होकर वे बोले
'नर' या 'कुंजर'।

युद्ध की इस विभीषिका से अश्वत्थामा विक्षिप्त हो जाता है। बर्बर पशु बन जाता है। उसे कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान नहीं रह जाता और जो भी उसके समक्ष आता है वह उसकी हत्या कर देना चाहता है। युद्ध की बर्बरता उसके विवेक को नष्ट कर देती है। अश्वत्थामा की यह पशुता एवं बर्बरता आधुनिक विश्व जीवन में भी विद्यमान है जो निकटवर्ती अतीत के दो प्राण महायुद्धों की देन है। आज के विश्व में उसी प्रकार की विक्षिप्तता, शून्यता, अनास्था, कुण्ठा, अविश्वास एवं निराशा दिखाई पड़ती है जो कभी महाभारत अथवा अंधायुग के अश्वत्थामा में निहित थी। कहना न होगा कि यह बर्बरता आधुनिक जीवन का विशेष लक्षण है। बर्बरता प्रागैतिहासिक काल के मानव जीवन में भी थी किंतु आधुनिक युग की बर्बरता आदिम युग की बर्बरता से भिन्न प्रकार की है। कारण यह है कि आदिम मानव समाज, सभ्यता, संस्कृति के क्रमिक विकास का भारी बोझ लादे हुए है। आधुनिक युग का संकट दुहरा है – एक ओर सभ्यता–संस्कृति के नैतिक पक्ष का दवाब है तो दूसरी ओर छलकपट बर्बरता से कुछ पा लेने की ललक है। इस ललक और आकर्षण के द्वंद्व में आधुनिक मानव बुरी तरह व्यथित है। भारती जी ने अश्वत्थामा को एक ऐसे अंध बर्बर पशु के रूप में चित्रित किया है जिसकी तुलना आज की आधुनिक परिस्थितियों एवं परिवेश के चक्रव्यूह में फंसे उस युवक से की जा सकती है जो प्रतिशोध एवं प्रतिहिंसा की ज्वाला में जलते हुए मानवता को कलंकित कर रहा है। आज यदि कोई व्यक्ति या देश नैतिक बनने का प्रयत्न करता है तो उसका अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता है और विवश होकर न चाहते हुए भी उसे अनैतिकता और बर्बरता का वरण करना पड़ता है। इस प्रकार आधुनिक संवेदना मनुष्यता एवं बर्बरता में विभक्त हो गई है। इस अंतर्विरोध और मानवता एवं पशुत्व के द्वंद को भारती जी ने अंधायुग में प्रस्तुत किया है। इस प्रकार अंधायुग का अश्वत्थामा मूल्यों–संदर्भों और परम्पराओं की विद्रुपता से पैदा हुआ एक ऐसा अग्निपुंज है जो प्रतिहिंसा, अमानवीयता, बर्बरता में ही अपने अस्तित्व को खोजता है। उसकी यह पशुता वास्तव में आज के लक्ष्य से कटे हुए और मूल्यों से भटके हुए मनुष्य की पशुता है, जो हिंसा–प्रतिहिंसा और बदले की आग में मानवता का गला घोंटने को तत्पर है। यह पौराणिक मिथकीय पात्र की चेतना को समकालीन संदर्भों में खोजने का प्रयास है। अश्वत्थामा प्रतीक है मूल्यों, मर्यादाओं से भटके आज के कतिपय युवा वर्ग का जो हिंसा में समाधान ढूँढ़ते है।

आजीवन ग्लानि एवं कुण्ठा की दारुण यातना झेलने के लिए अभिशप्त अश्वत्थामा न तो जी सकता है और न ही मर सकता है। निरंतर पीड़ा उसकी नियति है और यही स्थिति कहीं न कहीं आधुनिक मानव की भी है। एक ओर तो आधुनिक मनुष्य मनुष्यत्व की आकांक्षा रखता है और दूसरी ओर उसके समक्ष पशुत्व खड़ा करता है। अश्वत्थामा की भाँति वह भी पीड़ा में जीने के लिए अभिशप्त है।

आज की दुनिया अणु और परमाणु हथियारों के आविष्कार से पूर्णतः संत्रस्त है। यह आणविक संस्कृति ब्रह्मास्त्रों के युग से पृथक नहीं जान पड़ती। भारती जी ने अंधायुग के शीत और गर्म युद्धों की विभीषिका घुटन टूटन को अंधायुग के पृष्ठों पर नवीन रूप में अंकित किया है। अणु शक्ति यदि देश की सृजनात्मक शक्ति में लगे तो नवनिर्माण का द्वार खुल सकता है किंतु यदि उसका दुरुपयोग हो तो समस्त सृष्टि का कण–कण बिखरकर, टूटकर विच्छिन्न हो जाएगा। यदि इस आणविक शक्ति पर नियंत्रण नहीं लगाया गया तो विश्व को एक बार पुनः तीसरे विश्वयुद्ध का सामना करना पड़ सकता है। भारती जी ने यही भय व्यास के माध्यम से व्यक्त किया है –

''यदि यह लक्ष्य सिद्ध हुआ औ नरपशु
तो आगे आने वाली सदियों तक पृथ्वी पर रसमय वनस्पति नहीं होगी
शिशु होंग पैदा विकलांग और कुण्ठाग्रस्त
सारी मनुष्य जाति बौनी हो जाएगी
जो कुछ भी ज्ञान संचित किया है मनुष्य ने
सतयुग में, त्रेता में, द्वापर में
सदा–सदा के लिए होगा विलीन वह
गेहूं की बालों में सर्प फुफकारेंगे
नदियों में बह–बहकर आयेगी पिघली आग।''

आज अनेक युवा दिग्भ्रमित होकर अणु शक्ति के निर्माण में संलग्न है। अस्त्रों–शस्त्रों की होड़ विश्व मानव के वर्तमान और भविष्य के लिए चिंता का विषय है। ये अस्त्र–शस्त्र मानव रक्षा के साधन बन पायेंगे या नहीं, ये तो नहीं कहा जा सकता, किंतु इतना तो कहा जा सकता है कि ये सब वर्तमान युग में आत्महत्या के कारण अवश्य बनते जा रहे हैं। इसी ओर संकेत करते हुए अंधायुग के दो प्रहरी परस्पर वार्तालाप करते हुए कहते हैं –

''प्रहरी 1 अस्त्र रहेंगे तो
प्रहरी 2 उपयोग में आयेंगे ही
प्रहरी 1 अब तक वे अस्त्र
प्रहरी 2 दूसरों के लिए उठते थे
प्रहरी 1 अब वे अपने ही विरुद्ध काम आयेंगे
प्रहरी2 यह जो हमारे–अस्त्र अब तक निरर्थक थे
प्रहरी 1 कम से कम उनका
प्रहरी 2 आज कुछ तो उपयोग हुआ।''

अंधायुग में प्रयुक्त ब्रह्मास्त्र शब्द का प्रयोग आधुनिक युगीन परमाणु बम का पर्याय है। ब्रह्मास्त्र से होने वाले विनाशकारी प्रभाव को दर्शाते हुए यहाँ व्यास का कथन है –

''अर्जुन सुनो
मैं हूँ व्यास
तुम वापस ले लो ब्रह्मास्त्र को
अश्वत्थामा/अपनी कायरता से तू
मत ध्वस्त कर मनुजता को
वापस ले अपना ब्रह्मास्त्र और मणि देकर
वन में चला जा.....।''

यहाँ व्यास ब्रह्मास्त्र के प्रयोग से उत्पन्न होने वाले विनाशकारी दुष्परिणामों की ओर संकेत कर रहा है।

भारती जी ने वर्तमान युग की अन्धता का प्रतीक गांधारी द्वारा स्वीकार अंधता को बनाया है। आधुनिकयुगीन विकृत परिस्थितियों और विघटनशील मनोवृत्ति वाले व्यक्तियों का चरित्र गांधारी के चरित्रांकन के माध्यम से व्यक्त हुआ है। गांधी ने अंधता का वरण किया है, यह

गांधारी के सपनों पर अंधकार छा जाने की घटना है। जो संकटों से बचने की कोशिश में अधिक भयंकर संकटों के निर्माण की साक्षी बनती हैं। यह उसकी इच्छापूर्ति न थी उसकी आत्मगति थी। गांधारी की भांति अपने पिता, पुत्र तथा परिवार के मर्यादाहीन आचरण के प्रति तन–मन पर पट्टी बाँधने वालों की कमी आज भी नहीं है।

सर्वत्र अनास्था, युद्ध, संस्कृति तथा आत्मघाती मनोवृत्ति से निर्मित अंधायुग का परिवेश सत्य, मर्यादा तथा दायित्व के प्रश्नों को उभारता है। लेखक के विचारों को पूर्ण मान्यता देने पर भी लक्ष्मीकांत वर्मा ने अंधायुग को अनास्थावादी, निराशापूर्ण कृति स्वीकार नहीं किया। जिस युग में अश्वत्थामा और युयुत्सु दोनों की विक्षिप्तता ही कथा में विवेक को प्रकाश दे सकती है।

इसलिए उसका स्वर अशक्त निराशा का स्वर नहीं है, उसमें खिन्नता का दोष नहीं है। उसमें विष नहीं वरन प्रकाश के, सत्य को स्थापित करने की तड़प है।'' युयुत्सु के चरित्र में ईश्वर की व्यापकता बोलती है। युयुत्सु सत्य की त्रासदी का जीवंत प्रतीक है। गूंगे सैनिक की घृणा और प्रजा का उपेक्षा भय उसे इस सामा तक तोड़ देता है कि वह आत्महत्या करने को बाध्य हो जाता है। आधुनिक युग के सभी सिद्धांत. जीवन मूल्य, आदर्श, सभी मान्यताएँ खोखले सिद्ध हो रहे है। युग की के सभी मर्यादाएँ टूट रही हैं जिन्हें लक्षित करके आज का मानव इस कटू यथार्थ से परिचित हो गया है कि आधुनिक युग में सत्य और असत्य, शाश्वत की पहचान करना दुष्कर हो गया है। डॉ. हरिश्चंद्र वर्मा ने युयुत्स के जीवन की त्रासदी को आधुनिक नवयुवक की त्रासदी के रूप में देखते हुए लिखा हैः ''युयुत्सु की त्रासदी इन सभी सदाशय युवकों की त्रासदी हैं जो परस्पर, विरोधी परिस्थतियों की चक्की में पिसते हुए अपना जीवन संघर्ष जारी रखते हैं, और अंत में चारों ओर से उपहास और उपेक्षा के विषय बन कर घुटन, आत्मग्लानि, अवसाद, हीनता–ग्रन्थि, टूटन, निराशा, अनास्था का दंश सहते हुए आत्महत्या कर लेने को विवश होते हैं। युयुत्सु आधुनिक युगबोध से सम्पृक्त उस मानव का प्रतिनिधि पात्र है जो निरंतर सन्मुख प्रवृत्तियों के थपेड़ो से आहत होकर आत्महत्या करने को बाध्य होता है।

अंधायुग की भूमिका में कवि ने अंकित किया है – ''कुण्ठा, निराशा, रक्तपात, प्रतिशोध, विकृति, कुरुपता, अन्धापन इनसे हिचकिचाना क्या इन्हीं में तो सत्य के दुर्लभ कण छिपे हुए हैं, तो इनमें क्यों न निडर धँसूं । इनमें घुस कर भी मैं मर नहीं सकता।'' और अपनी इस उपलब्धि की अनुभूति को कवि ने सामाजिक मर्यादा की शालीनता से बाँधे रखा। जब वेदना सब की भोगी है. तो जो सत्य पाया है, वह अकेले मेरा कैसा हुआ? एक धरातल ऐसा भी होता है जहाँ निजी और व्यापक का बाह्य अंतर मिट जाता है। वे भिन्न नहीं रहते। 'कहियत भिन्न न भिन्न। कथानक और प्रेरणा की यथार्थता को समेटे अंधायुग की भावभूमि की यह लोकसम्पृक्ति जो नयी कविता की प्रवृत्ति विशेष है, अभिन्न अंग बन गई है। भारती जी ने कृष्ण के चरित्र को एक इतिहास नियंता व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया है तथा पौराणिक स्वरूप को सुरक्षित रखते हुए एक सामान्य आधुनिक मानव के रूप में भी चित्रित किया है। जहाँ एक ओर भारती जी कृष्ण की आलौकिक शक्तियों की ओर संकेत करते हैं वहीं दूसरी ओर उनमें अनन्त इच्छापूर्ति की शक्ति रखने वाले मानव के रूप को भी देखते हैं। कृष्ण के माध्यम से भारती ने सत्य, मर्यादा, आस्था, कर्मण्यता आदि जीवन–मूल्यों की प्रतिष्ठा करते हुए मानव भविष्य के कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है। अपनी मृत्यु के समय वे जिस प्रकार अंधे युग में सबके दायित्व का भार वहन करते हुए शरीर का त्याग करते हैं उसे देखकर अश्वत्थामा जैसे मर्यादाहीन तथा अनासक्त और युयुत्सु जैसे अनास्थावादी पात्र भी नतमस्तक होकर पुनः सत्य और मर्यादा के प्रति नतमस्तक दिखाई देते है –

''पर एक तत्व है बीजरूप स्थित मन में
साहस में, स्वतंत्रता में, नूतन सर्जन में
वह है, निरपेक्ष उतरता है पर जीवन में
दायित्वमुक्त मर्यादित, मुक्त आचरण में।''

अंतिम दो पंक्तियों में भारती जी ने जो मानववादी आधारभूमि प्रस्तुत की उसमें व्यक्ति स्वातंत्रय का विचार भी समाहित है। मानव में नियति को स्वीकार करने की जो भावना निहित है उसके साथ–साथ उत्तरदायित्व की भावना उससे अविच्छिन्न रूप से संबंद्ध है। भारती जी ने अंधायुग में आज के आधुनिक जीवन में व्याप्त शोषक और शोषित की समस्या को स्वर देकर अपनी प्रखर चेतना का परिचय दिया है। उन्होंने उद्घोषणा में कहा है कि धर्म एवं अर्थ पतनोन्मुख हो जायेंगे, धीरे–धीरे धरती विनाश के गहरे गर्त की ओर खिसकती चली जाएगी। सत्ता केवल उन्हीं के हाथ में होगी जिनके हाथ में पूँजी होगी। भौतिक ऐश्वर्यवान संपन्न व्यक्तियों को ही महत्व मिलेगा जो अपने चेहरे पर एक नकली मुखौटा ओढ़े रहेंगे अर्थात् जिनकी कथनी और करनी. विचार और कर्म में कोई सामंजस्य नहीं होग। राज्यसत्ता केवल अपना लोलुपतामय स्वार्थ साधन करती रहेगी, व्यक्ति, समाज एवं देश के कल्याण की चिंता कम करेगी और तब स्थिति इस प्रकार भयाक्रांत हो उठेगी कि राजशक्तियों के डर से सामान्यजन उसी प्रकार अपने कुण्ठित अंतर्मन की गहन गुफाओं में छिप जायेंगे जैसे आदिम अवस्था में मनुष्य पशुमय से पर्वत की गुफाओं में भाग कर छप जाया करते थे। आधुनिक शासन तंत्र की अव्यवस्था और अराजकता किसी से छिपी नहीं है। प्रहरियों के वार्तालाप में आधुनिक शासन व्यवस्था पर कटु व्यंग्य किया गया है –

''प्रहरी 1 हम जैसे पहले थे
प्रहरी 2 वैसे ही अब भी हैं
प्रहरी 1 शासन बदले
प्रहरी 2 स्थितियाँ बिल्कुल वैसी हैं
प्रहरी 1 इससे तो पहले के ही शासक अच्छे थे..
प्रहरी 2 अन्धे थे
प्रहरी 1 लेकिन वे शासन तो करते थे।''

यहीं कथा गायन की पंक्तियों को संदर्भित करना भी उपयुक्त होगा। अंधी शासन व्यवस्था का अंग बनकर यंत्रवत कार्य करने का अभिशाप केवल प्रहरियों को ही नहीं झेलना पड़ रहा। प्रकारांतर से आधुनिक मानव की भी यही पीड़ा है–

''आसन्न पराजय वाली इस नगरी में
सब नष्ट हुई पद्धतियाँ धीमे–धीमे
यह शाम पराजय की, भय की, संशय की
भर गये तिमिर से ये सूने गलियारे
जिनमें बूढा झूला भविष्य याचक–सा
है भटक रहा टुकड़े को हाथ पसारे।''

साहित्य की इस उदात्त कौंध से गुजरते हुए महसूस होता है कि जैसे सारे दर्द–दुःख निर्मल रूप में समंजित हो रहे हैं। विवेक, मर्यादा और अंधत्व इन तीनों को एक ही बिंदु पर कवि झेल रहा है। कवि अनुभव करता है कि विवेक हार गया मर्यादा टूट चुकी है और कवि की मूल चिंता सत्य और मर्यादा की है। मर्यादा की बजाय अंधापन सिंहासन पर बैठा है। यहाँ भारती जी मर्यादा की प्रतिष्ठा के लिए भी आश्वस्त हैं। डॉ. राजपाल के शब्दों में सत्य और मर्यादा जीव के ऐसे मूल्य है जिन्हें सामायिक परिस्थितियों नष्ट नहीं कर सकती। जिस प्रकार जीवन कभी बदलता नहीं, उसका प्रवाह भले ही बदल जाये। इसी प्रकार इन मूल्यों के विषय में कहा जा सकता है कि युगीन संदर्भों में अनास्था अमर्यादा, अन्याय, प्रतिरोध, कुण्ठा, निराशा आदि जीवन में ऐसी सामाजिक स्थितियाँ हैं जो क्षणिक हैं अर्थात् पानी में बुलबुले के समान उनकी स्थिति है। उनका जीवन के चिरन्तन प्रवाह में भले ही महत्व स्वीकार कर लिया जाए पर आस्था, विश्वास. श्रद्धा मर्यादा एवं सत्य जीवन के परम तत्व हैं, जिनके अभाव में इसे प्रवाह युक्त रख पाना असंभव है।''

जिस प्रकार महाभारत में अंधों के द्वारा सिंहासन सुशोभित है। धृतराष्ट्र के स्थूल अंधेपन के तथ्य को खण्डित करके ये पंक्तियाँ दूसरा अर्थ निर्मित करती हैं तथा राज्य और व्यक्ति के भीतर निहित मर्यादा और अंधेपन को व्यक्त करने लगती हैं। महाभारत युग का शासन सत्ता के अंधेपन का प्रतीक है जो विवेक और मर्यादा को देख ही नहीं पा रहे थे। क्या आज की स्थिति कुछ उसी प्रकार की नहीं है? सब अपने स्वार्थों की पूर्ति में व्यस्त हैं, व्यापक मानवता, सत्य, विवेक तथा मर्यादा की चिंता किसी को नहीं।

खाली स्टेज पर दो सशक्त प्रहरी वार्तालाप करते हैं। ये प्रहरी सत्रह दिनों तक इसी प्रकार पहरा देते रहे हैं। संपूर्ण मंच पर युद्ध की अंतिम संध्या का सूनापन छा रहा है और लगता है कि ये प्रहरी उदासी और शून्यता की ही रक्षा कर रहे हैं।

''प्रहरी 1 जिसने अब हमको थका डाला है
मेहनत हमारी निरर्थक थी
आस्था का
साहस का
अस्तित्व का हमारे
कुछ अर्थ नहीं था
कुछ भी अर्थ नहीं था।

प्रहरियों के वार्तालाप में व्यंग्य, विडंबना और परितृप्त विद्यमान वर्तमान है। प्रहरियों की पीड़ा वैयक्तिक न होकर आधुनिक मनुष्य की पीड़ा का संकेत देती है। ये प्रहरी व्यर्थता के कड़वे एहसास से थके हुए हैं। इन्होंने सत्रह दिनों के लोहमर्षक संग्राम में भाग तो नहीं लिया, किंतु राजमहल के सूने गलियारे में पहरा देते रहे। ये शारीरिक स्तर से अधिक मानसिक स्तर पर थके जान पड़ते हैं। उनका सारा कर्तव्य निरुद्देश्य है और निरर्थक प्रयत्न थकान के अतिरिक्त और दे भी क्या सकता है। उनके समक्ष अब एक मूलभूत प्रश्न सशक्त रूप में उपस्थित होता है कि उनके जीवन की सार्थकता आखिर है क्या? वे अब अनुभव करने लगे हैं कि उन्हें एक विकृत शासन तंत्र के नीचे दबा रहना पड़ा है। मात्र पहरा देना उनका काम है। उनका जीवन और कर्तव्य कर्म, शासन व्यवस्था का ही एक यांत्रिकीकरण होकर रह गया है। जब रक्षणीय कुछ भी नहीं है तब पहरा देने का अर्थ क्या है। किंतु यह विचित्र विडंबना है कि उन्हें न चाहते हुए भी निरुउद्देश्य पहरा देना पड़ता है ये प्रहरी कौरवों के राजमहल के गलियारे में टहलने वाले प्रहरी मात्र नहीं, प्रतीक भी है उस साधारण मानव के जिसके भीतर भी इसी प्रकार का एक सूना गलियारा है, अंधकार है, जिसमें उदासी टहल रही है। व्यक्ति को जब स्वेच्छापूर्ण जीवन जीने का अवसर नहीं मिलता तब उसे जीवन की निरर्थकता का बोध होने लगता है। जीना उनके लिए भार बन जाता है। प्रहरियों के वार्तालाप में मूलभूत प्रश्न जीवन सत्य का स्पर्श करता है। प्रहरी के जीवन और रक्षणीय वस्तु में कोई संबंध नहीं है। जब बिना संबंध के कर्म में युक्त हुआ जाता है तब एक शून्यता और मरुस्थल का उदय होता है। जब ये अपनी स्वतंत्रता की रक्षा नहीं कर पाते तब ये निष्क्रिय–नपुसंकता में परिणत होते चले जाते हैं। किंतु वे समर्थ हैं, उनके पास विवेक भी है जिसके आधार पर वे अपने अनुभवों और कार्यों का मूल्यांकन करते हैं। यह विवेक और समर्थता उनकी पीड़ा को और भी तीव्रता प्रदान करता है। यहाँ वे आधुनिक मानव की नियति के प्रतीक बन जाते हैं। उस मानव की नियति के, जिसके सामने न तो कोई मार्ग है और न चयन की स्वतंत्रता।

अंधायुग में संजय जहाँ महाभारत का ऐतिहासिक पात्र है, वहीं आधुनिक मानव का भी। उस मानव का जो सचेत, विवेकशील और तटस्थ है। महाभारत का यही एक मात्र पात्र है जो सचेत एवं तटस्थ है, जो मर्यादा, नैतिकता और सत्य को खण्डित होते देखता है। तटस्थ, सत्य दृष्टा होने के बावजूद संजय को भी सात्यकि और अश्वत्थामा के अकारण आक्रमण से मृत्यु का बोध होने लगता है। उसे बार–बार यह अनुभूति होने लगती है कि अंधों को सत्य का साक्षात्कार कराना बड़ा कठिन और जोखिम भरा कार्य है। अपनी इस अनुभूति में आधुनिक युग के महायुद्ध की विभीषिका की व्यंजना करते हुए वह कहता है–

''चरम त्रास के उस बेहद गहरे क्षण में
कोई मेरी सारी अनुभूतियों को चीर गया
कैसे दे पाऊँगा मैं संपूर्ण सत्य
उन्हें विकृत अनुभूति से।''

यह पीड़ा वस्तुतः आज के तटस्थ बुद्धिजीवी की सत्य न छिपा पाने की भी पीड़ा भी है।

अध्ययन का उद्देश्य

पौराणिक कथानक को लेकर वर्तमान समय की विकृतियाँ, विद्रुपताएँ असमानताएँ तथा असंगतियां हमारे सामने अंधायुग के माध्यम से उजागर होती हैं। इस कृति में आधुनिकता का पुट केवल भाव में ही नहीं प्रक्रिया में भी है। अंधायुग नए भावबोध पर आश्रित आधुनिकता का पोषक है। रचना में युगबोध को प्रभावशाली ढंग से विगत को आगत से जोड़ने और निरन्तरता में आस्था उत्पन्न करने का प्रयास किया गया है।

निष्कर्ष

अंधायुग की प्रासंगिकता पर विचार करते हुए विद्वानों ने लिखा है कि ''भारती का समस्त काव्य नए भावबोध पर आश्रित आधुनिकता का पोषक है यह आधुनिकता केवल कालगत भाव में नहीं वरन् चिंतन विधि में भी है, दृष्टिकोण और विवेक में है, बल्कि इससे आगे वह आधुनिकता इसलिए है कि आज के जीवन सत्य को देखने का प्रयास किया गया है। उनकी दृष्टि पिटी–पिटाई लकीर से दूर अन्वेषणपूर्ण परीक्षण जन्य है उसमें तर्कसंगत अवलोकन है, उसके आधार पर परीक्षण करके किसी समुचित निष्कर्ष पर पहुँचने की अदम्य लालसा है।''

इस प्रकार निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अंधायुग के मिथकीय कथानक को भारती ने युग–सापेक्ष मूल्यों के संदर्भ में पुनर्व्याख्यायित किया है। कथ्य–घटनाएँ और पात्र समकालीन परिस्थितियों की कसौटी पर खरे उतरते है। पूरी रचना पौराणिकता और आधुनिकता के स्तर पर नए अर्थ खोलती प्रतीत होती है। प्रतीकात्मकता और मानव–मूल्यों की पुर्नस्थापना इस रचना को प्रासंगिकता के धरातल पर कालजयी स्वरूप प्रदान करती है।

अंत टिप्पणी

1. *'हिन्दी नवलेखन'– रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ. 87*
2. *छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि– डॉ. कमला प्रसाद पाण्डेय, पृष्ठ 331*
3. *'अंधायुग–धर्मवीर भारती (निर्देश), पृष्ठ 10*
4. *'अंधायुग–धर्मवीर भारती (निर्देश), पृष्ठ 2*
5. *'अंधायुग–धर्मवीर भारती (निर्देश), पृष्ठ 57–87*
6. *'अंधायुग–धर्मवीर भारती (निर्देश), पृष्ठ 25*
7. *'अंधायुग–धर्मवीर भारती (निर्देश), पृष्ठ 78*
8. *'अंधायुग' धर्मवीर भारती (निर्देश), पृष्ठ 89.*
9. *'अंधायुग' धर्मवीर भारती (निर्देश), पृष्ठ 76.*
10. *'नयी कविता के प्रतिमान', लक्ष्मीकांत वर्मा, पृष्ठ 75.*
11. *'नयी कविता के नाट्य काव्य' – डॉ. हरिशचंद्र वर्मा, पृष्ठ 141.*
12. *'अंधायुग' (भूमिका), धर्मवीर भारती*
13. *'अंधायुग' (भूमिका), धर्मवीर भारती, पृष्ठ 108.*
14. *'अंधायुग' (भूमिका), धर्मवीर भारती, पृष्ठ 87.*
15. *'अंधायुग' (भूमिका), धर्मवीर भारती, पृष्ठ 31.*
16. *धर्मवीर भारती : साहित्य के विविध आयाम – डॉ. हुकुमचंद राजपाल, पृष्ठ 57.*
17. *धर्मवीर भारती : साहित्य के विविध आयाम – डॉ. हुकुमचंद राजपाल, पृष्ठ 5.*
18. *'अंधायुग' (भूमिका), धर्मवीर भारती, पृष्ठ 22.*
19. *आलोचना (दिसम्बर) 1966, पृष्ठ 64.*